श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ब्रह्मा स्तुति(भा•म•3.9)

कर घोर तपस्या ब्रह्मा हर्षे,नारायण के तत्व को जान ।
सृष्टि सृजन को होकर तत्पर,पद्मज करते प्रभु गुणगान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयः(स्) स्कन्धः
अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां(न्),
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं(म्),
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ 1॥

सुचिरान्+ ननु , गतिरित्य+ वद्यम् ,नान्यत्+ त्वदस्ति
मायागुण+ व्यतिकरा+ द्यदुरुर्+ विभासि

ब्रह्माजी ने कहा- प्रभो ! आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान सका हूँ। अहो ! कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूप को नहीं जान पाते। भगवान ! आपके सिवा और कोई वस्तु

नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है, क्योंकि माया के गुणों के क्षुभित होने के कारण केवल आप ही अनेकों रूपों में प्रतीत हो रहे हैं।

रूपं(यँ) यदेतदवबोधरसोदयेन,

शश्वन्निवृत्ततमसः(स्) सदनुग्रहाय ।

आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं(यँ),

यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ 2॥

यदे+ तदवबो+ धरसो+ दयेन, शश्वन्+ निवृत्त+ तमसः(स्)

गृही+ तमवता+ रशतै+ कबीजं(यँ), यन्ना+ भिपद्मभवना+ दहमा+ विरासम्

देव ! आपकी चित शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान आप से सदा ही दूर रहता है। आपका यह रूप, जिसके नाभि-कमल से मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारों का मूल कारण है। इसे आपने सत्पुरुषों पर कृपया करने के लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है।

नातः(फ्) परं(म्) परम यद्भवतः(स्) स्वरूप-

मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।

पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्,

भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ 3॥

मानन्दमा+ त्रमविकल्प+ मविद्धवर्चः, विश्व+ सृजमे+ कमविश्व+ मात्मन् ,भूतेन्द्रियात्+ मकमदस्त

परमात्मन् ! आपका जो आनन्दमात्र, भेदरहित, अखण्ड तेजोमय स्वरूप है, उसे मैं इससे भिन्न नहीं समझता। इसलिये मैंने विश्व की रचना करने वाले होने पर भी विश्वातीत आपके इस अद्वितीय रूप की ही शरण ली है। यहाँ सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियों का भी अधिष्ठान है।

तद्वा इदं(म्) भुवनमङ्गल मङ्गलाय,

ध्याने स्म नो दर्शितं(न्) त उपासकानाम् ।

तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं(यँ),

योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ 4॥

नरकभाग्+ भिरसत्+ प्रसङ्गैः

हे विश्वकल्याणमय! मैं आपका उपासक हूँ, आपने मेरे हित के लिये ही मुझे ध्यान में अपना यह रूप दिखलाया है। जो पापात्मा विषयासक्त जीव हैं, वे ही इसका अनादर करते हैं। मैं तो आपको इसी रूप में बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं(ञ्),

जिघ्रन्ति कर्णविवरैः(श्) श्रुतिवातनीतम् ।

भक्त्या गृहीतचरणः(फ्) परया च तेषां(न्),

नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुं(म्)साम् ॥ 5॥

त्वदी+ यचरणाम्+ बुजको+ शगन्धं(ञ्), श्रुतिवा+ तनीतम्

हृदयाम्+ बुरुहात्+ स्वपुं(म्)साम्

मेरे स्वामी ! जो लोग वेद - रूप वायु से लायी हुई आपके चरण रूप कमलकोश की गन्ध को अपने कर्णपुटों से ग्रहण करते हैं, उन अपने भक्तजनों के हृदय कमल से आप कभी दूर नहीं होते; क्योंकि वे पराभक्ति रूप डोरी से आपके पादपद्मों को बाँध लेते हैं।

तावद्भयं(न्) द्रविणदेहसुहृन्निमित्तं(म्),

शोकः(स्) स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।

तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं(यँ),

यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं(म्) प्रवृणीत लोकः ॥ 6॥

द्रविणदे+ हसुहृन्+ निमित्तं(म्), तावन्+ ममेत्+ यसदव+ ग्रह ,तेऽङ्घ्रि+ मभयं(म्)

जब तक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दों का आश्रय नहीं लेता, तभी तक उसे धन, घर और बन्धुजनों के कारण प्राप्त होने वाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभी तक उसे मैं मेरेपन का दुराग्रह रहता है, जो दुःख का एकमात्र कारण है।

दैवेन ते हतधियो भवतः(फ्) प्रसङ्गात्,

सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।

कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना,

लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ 7॥

सर्वाशुभो+ पशमना+ द्विमुखेन्द्रिया, का+ मसुखले+ शलवाय

लोभाभिभू+ तमनसोऽ+ कुशलानि

जो लोग सब प्रकार के अमङ्गलों को नष्ट करने वाले आपके श्रवण-कीर्तनादि से इन्द्रियों को हटाकर लेशमात्र विषय - सुख के लिये दीन और मन-ही-मन लालायित होकर निरन्तर दुष्कर्मों में लगे रहते हैं, उन बेचारों की बुद्धि दैव ने हर ली है।

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः(श्),

शीतोष्णवातवरषैरितरेतराच्च ।

कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण,

सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ 8॥

मुहुरर्+ द्यमानाः(श्), शीतोष्णवा+ तवरषै+ रितरे+ तराच्च ,कामाग्निना+ च्युत

अच्युत! उरुक्रम! इस प्रजा को भूख-प्यास, वात, पित्त, कफ, सर्दी, गर्मी, हवा और वर्षा से, परस्पर एक - दूसरे से तथा कामाग्नि और दुःसह क्रोध से बार - बार कष्ट उठाते देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है।

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ-

मायाबलं(म्) भगवतो जन ईश पश्येत् ।

तावन्न सं(म्)सृतिरसौ प्रतिसं(ङ्)क्रमेत,

व्यर्थापि दुःखनिवहं(वँ) वहती क्रियार्था ॥ 9॥

यावत्+ पृथक्+ त्वमि+ दमात्+ मन

स्वामिन्! जब तक मनुष्य इन्द्रिय और विषयरूपी माया के प्रभाव से आपसे अपने को भिन्न देखता है, तब तक उसके लिये इस संसार चक्र की निवृत्ति नहीं होती। यद्यपि यह मिथ्या है, तथापि कर्मफल भोग का क्षेत्र होने के कारण उसे नाना प्रकार के दुःखों में डालता रहता है।

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निः(श्)शयाना,

नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।

दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव,

युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह सं(म्)सरन्ति ॥ 10॥

अह्न्या+ पृतार्त+ करणा, नानामनो+ रथधिया, दैवा+ हतार्थ+ रचना, युष्मत्+ प्रसङ्ग+ विमुखा

देव! औरों की तो बात ही क्या–जो साक्षात् मुनि हैं, वे भी यदि आपके कथा प्रसंग से विमुख रहते हैं तो उन्हें संसार में फँसना पड़ता है। वे दिन में अनेक प्रकार के व्यापारों के कारण विक्षिप्त चित्त रहते हैं, रात्रि में निद्रा में अचेत पड़े रहते हैं; उस समय भी तरह - तरह के मनोरथों के कारण क्षण - क्षण में उनकी नींद टूटती रहती है तथा दैववश उनकी अर्थ सिद्धि सब उद्योग भी विफल होते रहते हैं।

त्वं(म्) भावयोगपरिभावितहृत्सरोज,

आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुं(म्)साम् ।

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति,

तत्तद्वपुः(फ्) प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ 11॥

भावयो+ गपरिभा+ वितहृत्+ सरोज, श्रुते+ क्षितपथो, यद्यद्+ धिया, तत् + तद् + वपुः(फ्)

नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवण से ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्यों के भक्तियोग के द्वारा परिशुद्ध हुए हृदय - कमल में निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिये आप वही - वही रूप धारण कर लेते हैं।

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-

राराधितः(स्) सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।

यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको,

नानाजनेष्ववहितः(स्) सुहृदन्तरात्मा ॥ 12॥

तथो+ पचितो+ पचारै,यत्सर्व+ भूतदयया+ सदलभ्य+ यैको

नाना+ जनेष्+ ववहितः(स्), सुहृदन्+ तरात्मा

भगवान ! आप एक हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थित उनके परम हितकारी अन्तरात्मा है। इसलिये यदि देवता लोग भी हृदय में तरह - तरह की कामनाएँ रखकर भाँति-भाँति की विपुल सामग्रियों से आपका पूजन करते हैं, तो उससे आप उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियों पर दया करनेसे होते हैं। किन्तु वह सर्वभूत दया असत् पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ है।

पुं(म्)सामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्-

दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।

आराधनं(म्) भगवतस्तव सत्क्रियार्थो,

धर्मोऽर्पितः(ख्) कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥ 13॥

विविधकर्म+ भिरध्वरा+ द्यैर्, कर्हिचिद्+ ध्रियते

जो कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता - वह अक्षय हो जाता है। अतः नाना प्रकार के कर्म- यज्ञ, दान, कठिन तपस्या और व्रतादि के द्वारा आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना ही मनुष्य का सबसे बड़ा कर्मफल है, क्योंकि आपकी प्रसन्नता होने पर ऐसा कौन फल है जो सुलभ नहीं हो जाता।

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद-

मोहाय बोधधिषणाय नमः(फ्) परस्मै ।

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला-

रासाय ते नम इदं(ञ्) चकृमेश्वराय ॥ 14॥

शश्वत्+ स्वरू+ पमहसैव, विश्वोद्+ भवस्थिति+ लयेषु

आप सर्वदा अपने स्वरूप के प्रकाश से ही प्राणियों के भेद-भ्रमरूप अन्धकार का नाश करते रहते हैं तथा ज्ञान के अधिष्ठान साक्षात परमपुरुष हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के निमित्त से जो माया की लीला होती है, वह आपका ही खेल है, अतः आप परमेश्वर को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि,

नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।

ते नैकजन्मशमलं(म्) सहसैव हित्वा,

सं(यँ)यान्त्यपावृतमृतं(न्) तमजं(म्) प्रपद्ये ॥ 15॥

यस्या+ वता+ रगुणकर्म+ विडम्बनानि,नैकजन्+ मशमलं(म्), सं(यँ)यान्+ त्यपा+ वृतमृतं(न्)

जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मों को सूचित करने वाले देवकी - नन्दन, जर्नादन, कंस-निकन्दन आदि नामों का विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मों के पापों से तत्काल छूटकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ।

यो वा अहं(ञ्) च गिरिशश्च विभुः(स्) स्वयं(ञ्) च,

स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।

भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्-

तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ 16॥

स्थित्युद्+ भव+ प्रलय+ हेतव

भगवान ! इस विश्ववृक्ष के रूप में आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूलप्रकृति को स्वीकार करके जगत को उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिये मेरे, अपने और महादेवजी के रूप में तीन प्रधान शाखाओं में विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाखा प्रशाखाओं के रूप में फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

लोको विकर्मनिरतः(ख्) कुशले प्रमत्तः(ख्),

कर्मण्ययं(न्) त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।

यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां(म्),

सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ 17॥

भवदर्+ चने, सद्यश्+ छिनत्त्य+ निमिषाय

भगवान ! आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिये कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किन्तु वे इस ओर से उदासीन रहकर सर्वदा विपरीत कर्मो में लगे रहते हैं। ऐसी प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन-आशा को जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रता से काटता रहता है, वह बलवान काल भी आपका ही रूप है; मैं उसे नमस्कार करता हूँ।

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्य-

मध्यासितः(स्) सकललोकनमस्कृतं(यँ) यत् ।

तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्-

तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ 18॥

यस्माद्+ बिभेम्+ यहमपि, द्विपरार्ध+ धिष्ण्य, सकललो+ कनमस्+ कृतं(यँ)

बहुसवोऽ+ वरुरुत्+ समानस्

यद्यपि मैं सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, जो दो परार्द्ध पर्यन्त रहने वाला और समस्त लोकों का वन्दनीय है, तो भी आपके उस काल रूप से डरता रहता हूँ। उससे बचने और आपको प्राप्त करने के लिये ही मैंने बहुत समय तक तपस्या की है। आप ही अधियज्ञ रूप से मेरी इस तपस्या के साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्-

वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।

रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्-

तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ 19॥

तिर्यङ्+ मनुष्य+ विबुधादिषु ,वात्मेच्+ छयाऽऽत्म+ कृतसे+ तुपरीप्+ सया

निरस्+ तरतिरप्+ यवरुद्धदेहस्

आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषय सुख की इच्छा नहीं है, तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्म मर्यादा की रक्षा के लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीव योनियों में अपनी ही इच्छा से शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान को मेरा नमस्कार है।

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या,

निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।

अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां(म्),

भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं(वँ) विवृण्वन् ॥ 20॥

योऽविद्यया+ नुपहतोऽपि, जठरी+ कृतलो+ कयात्रः

अन्तर्जलेऽ+ हिकशिपुस्+ पर्शा+ नुकूलां(म्), भीमोर्+ मिमा+ लिनि

प्रभो! आप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश- पाँचो में से किसी के भी अधीन नहीं है; तथापि इस समय जो सारे संसारको अपने उदर में लीन कर भयंकर तरंग मालाओं से विक्षुब्ध प्रलयकालीन जल में अनन्त विग्रह की कोमल शय्या पर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकल्प की कर्म परम्परा से श्रमित हुए जीवों को विश्राम देने के लिये ही है।

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य,

लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।

तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग-

निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ 21॥

यन्ना+ भिपद्म+ भवना+ दहमा+ समीड्य, लोकत्रयो+ पकरणो

उदरस्+ थभवाय, निद्रावसा+ नविकसन्+ नलिने+ क्षणाय

आपके नाभि कमल रूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर में समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार में प्रवृत्त हुआ हूं। इस समय योगनिद्रा का अन्त हो जाने के कारण आपके नेत्र-कमल विकसित हो रहे हैं, आपको मेरा नमस्कार है।

सोऽयं(म्) समस्तजगतां(म्) सुहृदेक आत्मा,

सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।

तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं(म्),

स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं(म्) प्रणतप्रियोऽसौ ॥ 22॥

दृशमनुस्+ पृशता+ द्यथाहं(म्)

आप सम्पूर्ण जगत के एकमात्र सुहृद और आत्मा हैं तथा शरणागतों पर कृपा करने वाले हैं। अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्य से आप विश्व को आनन्दित करते हैं, उसी से मेरी बुद्धि को भी युक्त करें - जिससे मैं पूर्वकल्प के समान इस समय भी जगत की रचना कर सकूँ।

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या,

यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।

तस्मिन् स्वविक्रममिदं(म्) सृजतोऽपि चेतो,

युञ्जीत कर्मशमलं(ञ्) च यथा विजह्याम् ॥ 23॥

गृही+ तगुणा+ वतारः

आप भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के सहित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो अद्भुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत की रचना करने का उद्यम भी उन्हीं में से एक है। अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्त को प्रेरित करें शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टि रचना विषयक अभिमान रूप मल से दूर रह सकूँ।

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुं(म्)सो,

विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।

रूपं(वँ) विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे,

मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां(वँ) विसर्गः ॥ 24॥

विज्ञा+ नशक्ति+ रहमा+ समनन्+ तशक्तेः,विचित्र+ मिद+ मस्य

प्रभो इस प्रलय कालीन जल में शयन करते हुए आप अनन्तशक्ति परम - पुरुष के नाभि कमल से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञान शक्ति; अतः इस जगत के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेदरूप वाणी का उच्चारण लुप्त न हो।

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध-

प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं(वँ) विजृम्भन् ।

उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं(म्),

माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः(फ्) पुराणः ॥ 25॥

सोऽसा+ वद+ भ्रकरुणो,प्रेमस्+ मितेन, नयनाम्+ बुरुहं(वँ), गिरा+ पनयतात्+ पुरुषः(फ्)

आप अपार करुणामय पुराण पुरुष हैं। आप परम प्रेममयी मुसकान के सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष शय्या से उठकर विश्व के उद्भव के लिये अपनी सुमधुर वाणी से मेरा विषाद दूर कीजिये।

मैत्रेय उवाच

स्वसम्भवं(न्) निशाम्यैवं(न्), तपोविद्यासमाधिभिः ।

यावन्मनो वचः(स्) स्तुत्वा, विरराम स खिन्नवत् ॥ 26॥

तपो+ विद्या+ समाधिभिः

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं– विदुरजी ! इस प्रकार तप, विद्या और समाधि के द्वारा अपने उत्पत्ति स्थान श्रीभगवान को देखकर तथा अपने मन और वाणी की शक्ति अनुसार उनकी स्तुति कर थके-से होकर मौन हो गये।

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य, ब्रह्मणो मधुसूदनः ।

विषण्णचेतसं(न्) तेन, कल्पव्यतिकराम्भसा ॥ 27॥

अथा+ भिप्रे+ तमन्+ वीक्ष्य, कल्प+ व्यति+ कराम्भसा

लोकसं(म्)स्थानविज्ञान, आत्मनः(फ्) परिखिद्यतः ।

तमाहागाधया वाचा, कश्मलं(म्) शमयन्निव ॥ 28॥

लोकसं(म्)स्था+ नविज्ञान, तमाहा+ गाधया, शमयन्+ निव

श्रीमधुसूदन भगवान ने देखा कि ब्रह्माजी इस प्रलय जलराशि से बहुत घबराये हुए हैं तथा लोक रचना के विषय में कोई निश्चित विचार न होने के कारण उनका चित्त बहुत खिन्न है। तब उनके अभिप्राय को जानकर वे अपनी गम्भीर वाणी से उनका खेद शान्त करते हुए कहने लगे।

श्रीभगवानुवाच

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं(म्), सर्ग उद्यममावह ।

तन्मयाऽऽपादितं(म्) ह्यग्रे, यन्मां(म्) प्रार्थयते भवान् ॥ 29॥

उद्य+ ममा+ वह

श्री भगवान ने कहा - वेदगर्भ! तुम विषाद के वशीभूत हो आलस्य न करो, सृष्टिरचना के उद्यम में तत्पर हो जाओ। तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ।

भूयस्त्वं(न्) तप आतिष्ठ, विद्यां(ञ्) चैव मदाश्रयाम् ।

ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मन्, लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥ 30॥

ताभ्या+ मन्तर्+ हृदि, द्रक्ष्यस्+ यपा+ वृतान्

तुम एक बार फिर तप करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो। उनके द्वारा तुम सब लोकों को स्पष्टतया अपने अन्तःकरण में देखोगे।

तत आत्मनि लोके च, भक्तियुक्तः(स्) समाहितः ।

द्रष्टासि मां(न्) ततं(म्) ब्रह्मन्- मयि लोकां(म्)स्त्वमात्मनः ॥ 31॥

लोकां(म्)स्+ त्वमात्मनः

फिर भक्तियुक्त और समाहित चित्त होकर तुम सम्पूर्ण लोक और अपने में मुझको व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सम्पूर्ण लोक और अपने-आपको देखोगे।

यदा तु सर्वभूतेषु, दारुष्वग्निमिवं स्थितम् ।

प्रतिचक्षीत मां(ल्ँ) लोको, जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ 32॥

दारुष्+ वग्नि+ मिव, जह्यात् + तर् + ह्येव

जिस समय जीव काष्ठ में व्याप्त अग्नि के समान समस्त भूतों में मुझे ही स्थित देखता है, उसी समय वह अपने अज्ञानरूप मल से मुक्त हो जाता है।

यदा रहितमात्मानं(म्), भूतेन्द्रियगुणाशयैः ।

स्वरूपेण मयोपेतं(म्), पश्यन् स्वाराज्यमृच्छति ॥ 33॥

स्वाराज्य+ मृच्छति

जब वह अपने को भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरण से रहित तथा स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है, तब मोक्षपद प्राप्त कर लेता है।

नानाकर्मवितानेन, प्रजा बह्वीः(स्) सिसृक्षतः ।

नात्मावसीदत्यस्मिं(म्)स्ते, वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥ 34॥

नाना+ कर्म+ वितानेन, नात्मा+ वसी+ दत्यस्+ मिं(म्)स्ते,वर्षीयान्+ मदनुग्रहः

ब्रह्माजी ! नाना प्रकार के कर्मसंस्कारों के अनुसार अनेक प्रकार की जीवसृष्टि को रचने की इच्छा होने पर भी तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता, यह मेरी अतिशय कृपा का ही फल है।

ऋषिमाद्यं(न्) न बध्नाति, पापीयां(म्)स्त्वां(म्) रजोगुणः ।

यन्मनो मयि निर्बद्धं(म्), प्रजाः(स्) सं(म्)सृजतोऽपि ते ॥ 35॥

पापीयां(म्)स्+ त्वां(म्)

तुम सबसे पहले मन्त्रद्रष्टा हो। प्रजा उत्पन्न करते समय भी तुम्हारा मन मुझ में ही लगा रहता है, इसी से पापमय रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता।

ज्ञातोऽहं(म्) भवता त्वद्य, दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ।

यन्मां(न्) त्वं(म्) मन्यसेऽयुक्तं(म्), भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥ 36॥

दुर्+ विज्ञे+ योऽपि,भूतेन्द्रिय+ गुणात्मभिः

तुम मुझे भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरण से रहित समझते हो; इससे जान पड़ता है कि यद्यपि देहधारी जीवों को मेरा ज्ञान होना बहुत कठिन है, तथापि तुमने मुझे जान लिया है।

तुभ्यं(म्) मद्विचिकित्साया- मात्मा मे दर्शितोऽबहिः ।

नालेन सलिले मूलं(म्), पुष्करस्य विचिन्वतः ॥ 37॥

मद्+ विचिकित्+ साया

'मेरा आश्रय कोई है या नहीं ' इस सन्देह से तुम कमलनाल के द्वारा जल में उसका मूल खोज रहे थे, सो मैंने तुम्हें अपना यह स्वरूप - अन्तःकरण में ही दिखलाया है।

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं(म्), मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् ।

यद्वा तपसि ते निष्ठा, स एष मदनुग्रहः ॥ 38॥

यच्+ चकर्+ थाङ्ग, मत्कथा+ भ्युदयाङ्+ कितम्

प्यारे ब्रह्माजी ! तुमने जो मेरी कथाओं के वैभव से युक्त मेरी स्तुति की है और तपस्या में जो तुम्हारी निष्ठा है, वह भी मेरी ही कृपा का फल है।

प्रीतोऽहमस्तु भद्रं(न्) ते, लोकानां(वँ) विजयेच्छया ।

यदस्तौषीर्गुणमयं(न्), निर्गुणं(म्) मानुवर्णयन् ॥ 39॥

यदस्+ तौषीर्+ गुणमयं(न्)

लोक - रचना की इच्छा से तुमने सगुण प्रतीत होने पर भी जो निर्गुणरूप से मेरा वर्णन करते हुए स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो।

य एतेन पुमान्नित्यं(म्), स्तुत्वा स्तोत्रेण मां(म्) भजेत् ।

तस्याशु सम्प्रसीदेयं(म्), सर्वकामवरेश्वरः ॥ 40॥

सर्वका+ मवरेश्वरः

मैं समस्त कामनाओं और मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हूँ। जो पुरुष नित्यप्रति इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उस पर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा।

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्- दानैर्योगसमाधिना ।

राद्धं(न्) निः(श्)श्रेयसं(म्) पुं(म्)सां(म्), मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥ 41॥

दानैर्+ योग+ समाधिना, मत्प्रीतिस्+ तत्त्वविन्+ मतम्

तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि पूर्त, तप, यज्ञ, दान, योग और समाधि आदि साधनोंसे प्राप्त होनेवाला जो परम कल्याणमय फल है, वह मेरी प्रसन्नता ही है।

अहमात्माऽऽत्मनां(न्) धातः(फ्), प्रेष्ठः(स्) सन् प्रेयसामपि ।

अतो मयि रतिं(ङ्) कुर्याद्- देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ 42॥

देहादिर्+ यत्कृते

विधाता ! मैं आत्माओं का भी आत्मा और स्त्री-पुत्रादि प्रियों का भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय हैं। अतः मुझसे ही प्रेम करना चाहिये।

सर्ववेदमयेनेद- मात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।

प्रजाः(स्) सृज यथा पूर्वं(यँ), याश्च मय्यनुशेरते ॥ 43॥

मात्मनाऽऽत्+ माऽऽत्+ मयोनिना

ब्रह्माजी ! त्रिलोकी को तथा जो प्रजा इस समय मुझमें लीन है, उसे तुम पूर्वकल्प के समान मुझसे उत्पन्न हुए अपने सर्ववेदमय स्वरूप से स्वयं ही रचो।

मैत्रेय उवाच

तस्मा एवं(ञ्) जगत्स्रष्ट्रे, प्रधानपुरुषेश्वरः ।

व्यञ्जेदं(म्) स्वेन रूपेण, कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ 44॥

कञ्जना+ भस्तिरो+ दधे

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं — प्रकृति और पुरुष के स्वामी कमलनाथ भगवान सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी को इस प्रकार जगत की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नारायणरूप से अदृश्य हो गये।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायां(न्) तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥